2

जैन इतिहास के प्रसंग

भगवान अजितनाथ, शान्तिनाथ आदि

प्रकाशक
सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

पुस्तक :

जैन इतिहास के प्रसंग

भाग–2

(भगवान अजितनाथ, शान्तिनाथ आदि)

प्रेरणास्रोत :

आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा.

द्वारा निर्देशित ***जैन धर्म का मौलिक इतिहास***

तथा श्री गजसिंह जी राठौड़ आदि विद्वज्जनों द्वारा

सम्पादित के आधार पर

सम्पादक :

डॉ. दिलीप धींग

प्रकाशक :

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मंडल

बापू बाजार, जयपुर–3 (राजस्थान)

फोन नं. 0141–2575997, 2571163

फैक्स : 0141–2570753 Email : sgpmandal@yahoo.in

द्वितीय संस्करण : 2013

मुद्रित प्रतियाँ : 1100

मूल्य : **5/-** (पाँच रुपये मात्र)

मुद्रक : **दी डायमण्ड प्रिंटिंग प्रेस, जयपुर**

:: अन्य प्राप्ति स्थल ::

❒ **श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ**
घोड़ों का चौक, **जोधपुर–342001**
(राजस्थान) फोन: 0291 – 2624891

❒ **Shri Navratan ji Bhansali**
C/o. Mahesh Electricals,
14/5, B.V.K. Ayangar Road,
BANGALORE-560053
(Karnataka)
Ph. : 080-22265957
Mob. : 09844158943

❒ **Shri B. Budhmal ji Bohra**
C/o. Bohra Syndicate,
53, Erullapan Street,
Sowcarpet,**CHENNAI-79**
(Tamilnadu)
Ph. : 044-26425093
Mob. : 09444235065

❒ **श्रीमती विजया जी मल्हारा**
रतन सागर बिल्डिंग, कलेक्टर बंगला रोड,
चर्च के सामने, **जलगाँव–425001**
(महाराष्ट्र) फोन : 0257–2225903

❒ **श्री दिनेश जी जैन**
1296, कटरा धुलिया,
चाँदनी चौक, दिल्ली–110006
फोन: 011–23919370 मो. : 09953723403

प्रकाशकीय

भारतीय श्रमण-परम्परा में आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा. को उनके बहुआयामी अवदानों तथा उपकारों के लिए जाना जाता है। उनके द्वारा निर्देशित 'जैन धर्म का मौलिक इतिहास' (चार भाग) न सिर्फ श्रमण संस्कृति, अपितु भारतीय संस्कृति और इतिहास के लिए अगणित तथ्यों और जानकारियों से भरा उपयोगी दस्तावेज है। सुदूर अतीत में हुए प्रमुख व्यक्तियों और घटनाओं की तथ्य पूर्ण प्रस्तुति अत्यन्त दुष्कर कार्य है। इतिहास मनीषी आचार्य हस्ती के साधनामय तथा पाद-विहारी जीवन के दो दशकीय अथक श्रम और सतत शोध के फलस्वरूप करीब साढ़े तीन हजार पृष्ठों में इस इतिहास की प्रस्तुति सम्भव हुई। अपनी विलक्षण शोध-दृष्टि, विश्लेषण-क्षमता और प्रमाणों के आलोक में आचार्यश्री ने एक ओर इतिहास सम्बन्धी अनेक भ्रान्तियों का निराकरण किया, दूसरी ओर कई नये तथ्यों से हमें अवगत कराया। जहाँ, वे कोई निर्णय नहीं कर पाए, वहाँ उन्होंने यह निर्देश कर दिया कि 'इस सम्बन्ध में और भी शोध की आवश्यकता है।' उनके इस प्रकार के निर्देश में उनकी शोधप्रियता और शोध-की-प्रेरणा छिपी हुई है। उनके द्वारा प्रस्तुत जैन इतिहास समस्त संस्कृति-प्रेमी और इतिहास-प्रेमी जिज्ञासुओं को आकर्षित करता है।

जैन इतिहास बहुत ही रोचक और व्यापक विषय है। इसमें अनेक प्रेरक तथ्य, कथाएँ, घटनाएँ और प्रसंग भरे पड़े हैं। ये छोटे-बड़े प्रसंग जीवन, जगत्, समाज, आचार, विचार, परम्पराएँ, समय, इतिहास आदि के बारे में अनेक प्रकार के संकेत और निर्देश करते हैं। कथात्मक होने से ऐसे प्रसंग हमेशा के लिए मानस पटल पर अंकित हो जाते हैं और जीवन की अनजानी और अन्धियारी राहों में पथ-प्रदीप बनकर मार्गदर्शक बनते हैं।

आज की व्यस्त जिन्दगी में सारे इतिहास को आद्योपान्त पढ़ना सबके लिए सहूलियत भरा नहीं है। ज्ञानवर्द्धन, संस्कार-जागरण और जीवन-निर्माण के लिए अल्प मूल्य की छोटी-छोटी किताबों की उपयोगिता सर्वविदित है। आचार्य हस्ती जन्म शताब्दी के पुनीत अवसर पर हमारा विचार बना कि जैन इतिहास के रोचक और प्रेरक प्रसंगों की छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ तैयार की जाएँ, जिससे अधिकाधिक पाठकों तक प्रेरक ऐतिहासिक प्रसंग पहुँच सकें। ऐसा करने से सभी आयु और रुचि के पाठक वर्ग में इनकी पठनीयता बढ़ेगी। अल्प मूल्य की इन छोटी-छोटी पुस्तिकाओं को किसी अवसर विशेष पर बड़ी संख्या में वितरित करके हमारे इस अभिनव प्रयास का विशेष मूल्यांकन भी किया जा सकता है।

पूज्य आचार्यप्रवर के मार्गदर्शन में विद्वद्वरेण्य श्री गजसिंह जी राठौड़ एवं सम्पादक-मण्डल के सहयोग से **'जैन धर्म का मौलिक इतिहास'** के जो चार भाग तैयार हुए, उनकी

महत्ता विश्वविद्यालयों के सन्दर्भ ग्रन्थ के रूप में आज भी विद्यमान है। तथापि इन चारों भागों की विषय-वस्तु सर्वजनग्राह्य हो, इस दृष्टि से सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के अध्यक्ष श्री पी. शिखरमल जी सुराणा, चेन्नई के सत्प्रयासों से मौलिक इतिहास के संक्षिप्तीकरण का कार्य प्रारम्भ हुआ। डॉ. दिलीप जी धींग (उदयपुर वाले), बधाई के पात्र हैं कि उन्होंने चेन्नई आने के पश्चात् अल्पावधि में ही मौलिक इतिहास के विभिन्न इतिहास प्रसंगों को लघुखण्डों में संयोजित एवं सम्पादित कर दिया।

प्रस्तुत खण्ड में भगवान अजित नाथ और भगवान शान्ति नाथ, चक्रवर्ती सनत्कुमार, वासुदेव त्रिपृष्ठ तथा पशुबलि के दुष्परिणाम से जुड़े प्रेरक प्रसंगों का समावेश किया गया है।

लाखों श्रद्धालुओं के हृदयपटल में सतत बसने वाले आचार्य प्रवर श्री हीराचन्द्रजी म.सा. एवं उपाध्याय प्रवर श्री मानचन्द्रजी म.सा. का दीक्षा अर्द्धशती वर्ष मनाया जा रहा है। इस अवसर पर 'जैन इतिहास के प्रसंग' के विभिन्न भागों को प्रकाशित करते हुए हमें अत्यन्त प्रमोद अनुभव हो रहा है।

ह्न:: निवेदक ::ह्न

कैलाशमल दुगड	**सम्पतराज चौधरी**	**विनयचन्द डागा**
अध्यक्ष	कार्याध्यक्ष	मन्त्री

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

अनुक्रमणिका

क्रम	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
1.	भगवान अजित नाथ–निमित्त और वैराग्य	7
2.	सम्यक्त्व का प्रभाव	11
3.	वासुदेव त्रिपृष्ठ	18
4.	चक्रवर्ती सनत्कुमार	22
5.	भगवान शांतिनाथ–जीवदया का सुफल	26
6.	पशुबलि का दुष्परिणाम	28
7.	महाभारत में पशुबलि की निन्दा	33
8.	इतिहास पुरुष आचार्य हस्ती	38

भगवान अजितनाथ–निमित्त और वैराग्य

प्रकृति का नियम है कि वर्तमान में जिसका जीवन जितना उच्च होगा उसकी पूर्वजन्म की साधना भी उतनी ही उच्च रही होगी। जैन धर्म के दूसरे तीर्थंकर भगवान श्री अजितनाथ की पूर्वजन्म की साधना भी ऐसी ही उत्तम और अनुकरणीय थी। उनके पूर्वभव का वर्णन यहाँ किया जा रहा है।

जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र में सीता नाम की महानदी के दक्षिणी तट पर अति समृद्ध तथा परम रमणीय वत्स नामक एक विजय है। वहाँ सुसीमा नाम की अति सुन्दर नगरी थी। विमलवाहन नामक महाप्रतापी, न्यायप्रिय, धर्म परायण और शासक के योग्य श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न राजा वहाँ राज्य करते थे। वे भोगों से अलिप्त थे तथा राजकीय सुखों के प्रति अनासक्त थे। लोगों में दानवीर और दयानिधान के रूप में उनकी ख्याति थी।

सुखपूर्वक राज्य करते हुए राजा विमलवाहन एक दिन आत्म–निरीक्षण करते हुए सोचने लगे कि मानव जीवन पाकर प्राणी को क्या करना चाहिए। इस संसार में जन्म, जरा, मरण रूपी कालचक्र का न कोई ओर हैं न छोर। चौरासी लाख योनियों में मानव योनि ही एकमात्र ऐसी योनि

हैं जिसमें प्राणी साधना पथ पर अग्रसर हो सांसारिक दु:खों से मुक्त हो सकता है। मुझे भी इस पाश से मुक्त होने का स्वर्णिम अवसर प्राप्त हुआ है, इस मानव जीवन का एक-एक क्षण अमूल्य है। जो अनन्त मूल्यवान समय निकल गया, उसके लिए हाथ मल कर पछताने से कुछ मिलने वाला नहीं है पर अब जो जीवन शेष रहा है उससे अधिकाधिक आध्यात्मिक लाभ उठाना ही मेरे लिए परम हितकर होगा।

इस प्रकार महाराज विमलवाहन ने आत्महित साधना का सुदृढ़ संकल्प किया ही था कि उद्यान-पाल ने उनको प्रणाम कर निवेदन किया कि सुसीमावासियों के महान् पुण्योदय से नगरी के बाहर स्थित उद्यान में महान् तपस्वी आचार्य श्री अरिदमन का शुभागमन हुआ है।

इस समयोचित सुखद संवाद को सुनकर महाराज विमलवाहन को अनिर्वचनीय आनंद का अनुभव हुआ और उन्होंने सोचा कि कैसा शुभ संयोग है कि मन में शुभ भावना के उद्भूत होते ही संत समागम का सुअवसर स्वत: प्राप्त हुआ है। महाराज तुरन्त अपने परिजनों एवं पुरजनों के साथ उस उद्यान में पहुँचे। आचार्य अरिदमन का अमरत्व प्रदान करने वाला प्रवचन सुनकर विमलवाहन की वैराग्य भावना और प्रबल हो उठी। उन्होंने आचार्यदेव से विनयपूर्वक पूछा

कि अत्यंत दारुण दु:खों से परिपूर्ण इस संसार में निरंतर प्रताड़ित और पीड़ित होते रहने पर भी सर्वसाधारण प्राणी के मन में संसार से विरक्ति उत्पन्न नहीं होती। ऐसी स्थिति में आपको संसार से विरक्ति किस कारण या किस निमित्त से हुई?

उत्तर में आचार्यश्री ने कहा कि विज्ञ विचारक के लिए संसार में पग-पग पर वैराग्योत्पादक निमित्त प्रस्तुत होते रहते हैं, पर मोह-मद और ममत्व से अंधा बना प्राणी देखी को भी अनदेखी कर जीवन जीता रहता है। सुलभ-बोधी प्राणी तो स्वानुभूत या परानुभूत प्रत्येक घटना के निमित्त से तत्क्षण संसार से विरक्त हो जाता है।

राज्य सिंहासन पर आरूढ़ होने के कुछ समय बाद मैंने दिग्विजय करने का निश्चय किया और अपनी चतुरंगिणी सेना के साथ विजय-यात्रा पर निकल पड़ा। उस यात्रा के समय मैंने एक स्थान पर नन्दनवन के समान एक अति रमणीय उद्यान देखा। वापी-कूप-तड़ाग एवं लता मण्डपों से आकीर्ण वह उद्यान स्वर्ग-सा प्रतीत हो रहा था। उस उद्यान की मनोहर छटा पर मैं मुग्ध हो गया। अपने सामन्तों और सेनापतियों के साथ उस उद्यान में कुछ समय तक विश्राम करने के बाद मैंने पुन: दिग्विजय के लिए प्रस्थान

किया।

उस विजय-यात्रा में मैंने अनेक देशों पर अपना आधिपत्य जमाया, किन्तु वैसा नयनाभिराम उद्यान फिर कभी दृष्टिगोचर नहीं हुआ। दिग्विजय के पश्चात् जब मैं पुनः अपनी राजधानी की ओर लौटा तो उस उद्यान को पूर्णतः विनष्ट और उजड़ा हुआ पाया। घने विशाल फल-फूल से लदे वृक्षों की जगह खड़े ठूँठ प्रेतों के समान भयावह लग रहे थे। यह देखकर मेरे मन-मस्तिष्क को बड़ा गहरा आघात पहुँचा। मुझे सम्पूर्ण दृश्यमान् जगत् क्षणभंगुर प्रतीत होने लगा और मन में विचार आया कि संसार के सभी प्राणियों को देर-सवेर इस स्थिति को प्राप्त होना है।

इसके बाद जो विचार मेरे मन में आया उससे मैं काँप उठा, सिहर उठा। मैंने सोचा अनन्त काल से जन्म-मरण की चक्की में पिसता आ रहा मैं भी एक संसारी प्राणी हूँ, साधारण जीव हूँ और मुझे भी शीघ्र ही इस स्थिति का सामना करना होगा। अगर नहीं सँभला तो अनन्त काल तक भव-सागर में भटकना होगा। मुझे संसार एक विशाल अग्निकुण्ड के समान दाहक प्रतीत होने लगा। मुझे उसी क्षण संसार से विरक्ति उत्पन्न हो गई। मैंने उसी क्षण सब कुछ छोड़कर श्रमणधर्म की दीक्षा ग्रहण कर ली और तब से

शाश्वत सुखदायी पंच महाव्रतों का पालन कर रहा हूँ।

आचार्य श्री अरिदमन के जीवनवृत एवं प्रवचनों को सुनकर राजा विमलवाहन ने भी अपने पुत्र को राज्यभार सँभलाकर श्रमणधर्म स्वीकार कर लिया। मुनि बनने के पश्चात् विमलवाहन ने गुरु की सेवा में रहकर तपश्चरण के साथ-साथ आगमों का अध्ययन किया। सुदीर्घकाल तक पाँच समिति, तीन गुप्ति की विशुद्ध साधना की और अनन्त काल से संचित कर्मों की निर्जरा की। अरिहंत भक्ति आदि बीस बोलों में से कतिपय बोलों की उत्कट आराधना की और तीर्थंकर नाम गोत्रकर्म का उपार्जन किया। अन्त में अनशनपूर्वक आयु पूर्णकर विजय नामक अनुत्तरविमान में तैंतीस सागर आयु वाले देव रूप में उत्पन्न हुए और देवायुष्य पूर्ण करके जैन धर्म के दूसरे तीर्थंकर भगवान अजितनाथ के रूप में जन्म लिया।

सम्यक्त्व का प्रभाव

भगवान अजितनाथ विभिन्न क्षेत्रों और प्रदेशों में शाश्वत सत्य धर्म के उपदेश द्वारा प्राणियों को मोक्षमार्ग पर आरूढ़ करते हुए कौशाम्बी नगरी के बाहर उत्तर दिशा में स्थित उद्यान में पधारे। देवों ने समवसरण की रचना की। अशोक वृक्ष के नीचे विशाल सिंहासन पर विराजमान हो

प्रभु ने देशना आरंभ की। उसी समय एक ब्राह्मण अपनी पत्नी के साथ समवसरण में उपस्थित हुआ और प्रभु की प्रदक्षिणा तथा वन्दन-नमन के पश्चात् उनके चरणों के समीप बैठ गया। देशना के अनन्तर उस ब्राह्मण ने हाथ जोड़कर प्रभु से पूछा-''प्रभु यह इस प्रकार क्यों है?'' प्रभु ने उत्तर दिया-''यह सम्यक्त्व का प्रभाव है।'' ब्राह्मण ने आगे पूछा-किस प्रकार प्रभो?

प्रभु ने समझाया-सम्यक्त्व का प्रभाव बहुत बड़ा है। इसके प्रभाव से वैर शांत हो जाते हैं, व्याधियां नष्ट हो जाती हैं, अशुभ कर्म विलीन हो जाते हैं, अभीप्सित कार्य सिद्ध हो जाते हैं, देव आयु का बन्ध होता है, देव-देवीगण सहायतार्थ सदा समुद्यत रहते हैं। यह सब तो सम्यक्त्व के साधारण फल हैं। सम्यक्त्व की उत्कृष्ट उपासना से प्राणी समस्त कर्म-समूह को भस्म कर तीर्थंकर पद तक को प्राप्त कर शुद्ध, बुद्ध और मुक्त हो सकता है। प्रभु के मुख से यह सुनकर ब्राह्मण ने कहा-''भगवन् ऐसा ही है, इसमें किंचिन्मात्र भी अन्यथा नहीं है।'' इतना कहकर वह ब्राह्मण संतुष्ट मुद्रा में अपने स्थान पर बैठ गया।

देशना में उपस्थित श्रोताओं को इस रहस्य से अवगत कराने के लिए प्रभु के मुख्य गणधर ने पूछा-

''भगवन्! ब्राह्मण के प्रश्न और आपके उत्तर का रहस्य क्या है?'' इस पर भगवान अजितनाथ ने कहा-''यहाँ से थोड़ी दूरी पर शालिग्राम नामक एक गाँव है। उस गाँव में दामोदर नाम का एक ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नी का नाम सीमा था। उनके पुत्र का नाम शुद्धभट्ट था। शुद्धभट्ट का विवाह समय आने पर सिद्धभट्ट नामक ब्राह्मण की बेटी सुलक्षणा से किया गया। शुद्धभट्ट और सुलक्षणा सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे थे कि दोनों के माता-पिता स्वर्ग सिधारे और उनका सारा धन-वैभव भी नष्ट हो गया। स्थिति यहाँ तक बिगड़ी कि दोनों समय का भोजन प्राप्त करना भी उनके लिए दूभर हो गया। इस दरिद्रता से शुद्धभट्ट इतना दुःखी हुआ कि एक दिन चुपचाप अपनी पत्नी को बिना बताए परदेश चला गया। सुलक्षणा को जब इस बात का पता चला तो उसे बड़ा आघात पहुँचा। शोक सागर में डूबी हुई सबसे दूर एकाकिनी सुलक्षणा वैरागिन की तरह जीवन बिताने लगी।

उन्हीं दिनों विपुला नामक एक प्रवर्तिनी दो अन्य साध्वियों के साथ वर्षावास हेतु उस गाँव में आई और सुलक्षणा के घर में एक स्थान माँग कर रहने लगी। सुलक्षणा प्रतिदिन उस प्रवर्तिनी के उपदेशों को सुनती जिससे उसके

मन में धर्म के प्रति रुचि जागृत हुई। उसकी मिथ्यात्व की पर्तें दूर हुई तो उसके अन्तस्तल में सम्यक्त्व प्रकट हुआ और उसने संसार सागर से पार उतारने वाले जैन धर्म को स्वीकार कर लिया। इससे उसके कषायों का उपशमन हुआ और विषयवासनाओं के प्रति अरुचि और विरक्ति उत्पन्न हुई। सम्पूर्ण चातुर्मास में उसने अनवरत निष्ठा के साथ साध्वियों की सेवा-सुश्रूषा की। वर्षावास बीत जाने पर साध्वियों ने सुलक्षणा को बारह अणुव्रतों का नियम ग्रहण करवा कर श्राविका बनाया और वहाँ से अन्यत्र विहार किया। साध्वियों के विहार करने के पश्चात् सुलक्षणा का पति विदेश से विपुल धनराशि उपार्जित करके लौटा। पति के आने से सुलक्षणा बहुत ही प्रसन्न हुई। जब शुद्धभट्ट ने उससे पूछा कि मेरे जाने पर तुमने अपना समय कैसे बिताया तो सुलक्षणा ने कहा मैं आपके वियोग से दुःखी थी कि प्रवर्तिनीजी यहाँ पधार गईं और चार मास तक हमारे घर में ही विराजकर इसे पवित्र किया। उनके दर्शन से आपके विरह का दुःख शांत हुआ और मैंने उनसे सम्यक्त्व रत्न प्राप्त कर अपना जन्म सफल किया।

शुद्धभट्ट ने जिज्ञासा प्रकट की कि सम्यक्त्व किसे कहते हैं और वह कैसे होता है? सुलक्षणा ने वीतराग जिनेन्द्र

द्वारा प्ररूपित शाश्वत धर्म का स्वरूप अपने पति को समझाते हुए कहा–''रागद्वेषादि समस्त दोषों को नष्ट कर वीतराग बने अरिहंत प्रभु द्वारा प्ररूपित जैन धर्म को स्वीकार कर सुदेव, सुगुरु, और शुद्ध धर्म के प्रति अटल श्रद्धा रखना ही सम्यक्त्व है। सम्यक्त्व का ही दूसरा नाम सम्यग्दर्शन है। सम्यक्त्व के पाँच लक्षण हैं–शम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा और आस्था अर्थात् आस्तिक्य। स्वधर्मी बंधुओं को सम्यक्त्व में स्थिर रखना, प्रभावना, भक्ति, जिनशासन में कुशलता और चतुर्विध तीर्थ सेवा, इसके पाँच भूषण हैं।'' सम्यग्दर्शन और जैन धर्म के सही स्वरूप को अपनी पत्नी से अच्छी तरह समझकर शुद्धभट्ट बड़ा ही प्रसन्न हुआ। उसने भी सम्यक्त्व प्राप्त किया और पति–पत्नी दोनों सम्यक्त्वधारी बनकर जैन धर्म के अनुयायी बन गये। गाँव के अन्य ब्राह्मण उन दोनों को श्रावकधर्म का पालन करते देख उनकी निन्दा करने लगे कि वे अपने परम्परागत धर्म को छोड़कर श्रावक बन गए हैं।

कालान्तर में सुलक्षणा के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। सर्दी के दिन थे। एक दिन प्रातःकाल शुद्धभट्ट अपने पुत्र को साथ लिए ''धर्म–अग्निष्टिका'' के पास गया, जहाँ अनेक ब्राह्मण अग्नि ताप रहे थे। शुद्धभट्ट को अपने पास आया

देखकर वे लोग आग के चारों ओर इस तरह बैठ गए कि किसी और के बैठने के लिए स्थान न रहे, साथ ही बोले कि तुम श्रावक हो अत: तुम्हारे लिए हमारे बीच कोई स्थान नहीं है, और अट्टहास कर उन लोगों ने शुद्धभट्ट का उपहास किया। ब्राह्मणों के इस तिरस्कारपूर्ण व्यवहार से दु:खी और क्रुद्ध होकर शुद्धभट्ट ने कहा–''यदि जैन धर्म संसार सागर से पार उतारने वाला न हो, यदि अर्हत् तीर्थंकर सर्वज्ञ नहीं हो, यदि सम्यग्ज्ञान–दर्शन और चारित्र मोक्ष का मार्ग नहीं हो अथवा सम्यक्त्व नाम की कोई वस्तु संसार में नहीं हो तो मेरा यह पुत्र अग्नि में भस्म हो जाये और यदि ये सब है तो इसका बाल भी बाँका न हो, इसे तनिक भी आँच न आवे।'' ऐसा कहते हुए शुद्धभट्ट ने अपने पुत्र को अंगारों से भरी उस विशाल अग्नि–वेदी में फेंक दिया।

यह देखकर वहाँ बैठे हुए लोग आक्रोशपूर्ण उच्चस्वर में चिल्ला उठे– हाय हाय, इस अनार्य ने अपने पुत्र को जला दिया पर ज्योंही आग की ओर दृष्टि डाली तो देखा कि वहाँ आग का नाम तक नहीं है, उसके स्थान पर एक विशाल पूर्ण विकसित कमल पुष्प वहाँ सुशोभित है और उस पर बालक खिलखिलाता हुआ अपने खेल में मस्त है। लोग चकित हो उस चमत्कार को देखते रहे।

वास्तव में हुआ यों कि जिस समय शुद्धभट्ट ने अपने पुत्र को आग में फेंका, उस समय सम्यक्त्व के प्रभाव को प्रकट करने में तत्पर और लीन रहने वाली व्यन्तर जाति की देवी ने, जो संयोगवश वहीं कहीं थी, बड़ी तत्परता से अग्नि को तिरोहित कर उसकी जगह कमल का विशाल पुष्प प्रकट कर बालक की रक्षा की। वह देवी पूर्वजन्म में एक साध्वी थी और श्रमणधर्म की विराधना के कारण मरने पर व्यन्तरी हुई थी। जब उसने एक केवली प्रभु से अपने व्यन्तरी रूप में जन्म लेने का कारण पूछा तो उन्होंने उस पर यह बात स्पष्ट की और सुझाव दिया कि तुम्हें सदा सम्यक्त्व के प्रभाव और विकास को बढ़ावा देने के लिए तत्पर रहना चाहिए। तब से वह व्यन्तरी सम्यक्त्व के प्रभाव को प्रकट करने में उद्यत रहती है।

शुद्धभट्ट अपने पुत्र को लिए घर लौटा। उसने अपनी पत्नी को सारी बात बताई तो उसने कहा कि आपने अच्छा नहीं किया। यदि हमारा पुत्र जल जाता तो क्या सम्यक्त्व, जिनेन्द्र द्वारा प्ररूपित धर्म तथा अर्हत् प्रभु का अस्तित्त्व निरस्त हो जाता? पर इनका अस्तित्त्व तो त्रिकाल सिद्ध है।

इसके बाद ब्राह्मणी सुलक्षणा गाँव के उन सब

लोगों को तथा अपने पति को सम्यक्त्व में स्थिर करने के लिए अपने साथ लेकर यहाँ आई है। ब्राह्मण ने यहाँ आकर मुझसे उसी के बारे में पूछा है और मैंने भी उसे सम्यक्त्व का ही प्रभाव बताया है।

भगवान अजितनाथ के मुख से यह वर्णन सुनकर ब्राह्मण दम्पति के साथ आए हुए शालिग्राम के निवासियों की आस्था दृढ़ हुई। समवसरण में उपस्थित लोगों ने भी सम्यक्त्व ग्रहण किया। शुद्धभट्ट और सुलक्षणा ने उसी समय श्रमणधर्म की दीक्षा ग्रहण की और अनेक वर्षों तक विशुद्ध श्रमणाचार का पालन कर समस्त कर्मसमूह को नष्ट किया और अन्त में मोक्ष प्राप्त किया।

वासुदेव त्रिपृष्ठ

जैन धर्म के ग्यारहवें तीर्थंकर भगवान श्रेयांसनाथ एक बार विचरते हुए पोतनपुर पधारे। राजपुरुष ने भगवान के पदार्पण की शुभ सूचना प्रथम वासुदेव त्रिपृष्ठ को दी। भगवान के आगमन के शुभ समाचार सुनकर त्रिपृष्ठ इतने अधिक प्रसन्न हुए कि उन्होंने सन्देशवाहक को बारह करोड़ मुद्राओं से पुरस्कृत किया और अपने बड़े भाई प्रथम बलदेव अचल के साथ भगवान के चरण वंदन करने गये। भगवान की सम्यक्त्वसुधा बरसाने वाली वाणी को सुनकर दोनों

भाइयों ने सम्यक्त्व धारण किया।

भगवान महावीर के पूर्वभवी मरीचि के जीव ने ही त्रिपृष्ठ के रूप में जन्म लिया था। इधर प्रथम प्रतिवासुदेव अश्वग्रीव को निमित्तज्ञों की भविष्यवाणी से उसके संहारक के जन्मने की बात पता चली तो वह चिन्तातुर हो अपने प्रतिद्वन्द्वी की खोज में तत्पर रहने लगा।

उन दिनों अश्वग्रीव के राज्य में किसी शालिखेत में एक शेर का भयंकर आतंक छाया हुआ था। अश्वग्रीव की ओर से शेर को मरवाने के सारे उपाय निष्फल हो जाने पर उसने राजा प्रजापति को आदेश भेजा कि वह शालिखेत की शेर से रक्षा करें। प्रजापति शालिखेत पर जाने को तैयार हुए ही थे कि उनके वीर पुत्र राजकुमार त्रिपृष्ठ आ पहुँचे। त्रिपृष्ठ ने साहस के साथ अपने पिता से कहा – ''शेर से खेत की रक्षा कौनसा बड़ा कार्य है, मुझे आज्ञा दीजिये, मैं ही उस शेर को समाप्त कर दूंगा।''

पिता की आज्ञा से त्रिपृष्ठ अचल बलदेव के साथ शालिखेत पर जा पहुँचे। लोगों के मुँह से सिंह की भयंकरता और प्रजा में व्याप्त आतंक के सम्बन्ध में सुनकर उन्होंने उसे मिटाने का संकल्प किया। प्रजा में व्याप्त सिंह के आतंक को समाप्त कर दूँ तभी मेरे पौरुष की सफलता है।

दोनों भाई निर्भीक हो शेर की मांद की ओर बढ़े और त्रिपृष्ठ ने निर्भय सोए हुए शेर को ललकारा। सिंह भी बार-बार की आवाज से क्रुद्ध हुआ और भयंकर दहाड़ के साथ त्रिपृष्ठ पर झपटा। स्वभावत: शेर के पास कोई हथियार नहीं था, इसलिए त्रिपृष्ठ ने भी अपना हथियार फेंक दिया और विद्युत वेग से लपककर शेर के दोनों जबड़ों को पकड़कर आसानी से पुराने बांस की तरह उसे चीर डाला। सिंह क्रोध और ग्लानि से तड़प रहा था और विचार कर रहा था - आज एक मानव-किशोर ने मुझे कैसे मार डाला? सारथी ने शेर को आश्वस्त करते हुए कहा - ''वनराज! शोक न करो, जिस प्रकार तुम पशुओं में राजा हो, उसी प्रकार यह तेजस्वी युवक भी मनुष्यों में राजा है। तुम किसी छोटे व्यक्ति के हाथ नहीं मारे जा रहे हो।''

जब शालिखेत में भयंकर सिंह को मारकर उसके आतंक से लोगों को मुक्त कराने वाले त्रिपृष्ठकुमार के बारे में अश्वग्रीव को ज्ञात हुआ तो उसे यह निश्चय हो गया कि त्रिपृष्ठ ही उसका संहारक है। यह जानकर उसने इस कार्य के लिए दोनों भ्राताओं को सम्मानित करने के बहाने अपने यहाँ बुलाकर छल-बल से मरवा देने का निश्चय किया और इस हेतु उसने महाराज प्रजापति को सूचना भिजवाई।

इस संदेश के उत्तर में त्रिपृष्ठ ने कहला भेजा - जो

राजा एक शेर को भी नहीं मार सका, उससे हम किसी प्रकार का पुरस्कार लेने को तैयार नहीं हैं। यह सुन अश्वग्रीव तिलमिला उठा और सेना लेकर प्रजापति पर चढ़ाई कर दी। युद्ध के मैदान में अनावश्यक नरसंहार को रोकने की दृष्टि से त्रिपृष्ठ ने अश्वग्रीव को द्वन्द्वयुद्ध के लिए ललकारा। अश्वग्रीव भी त्रिपृष्ठ के इस प्रस्ताव से सहमत हो गया और दोनों में भयंकर द्वन्द्वयुद्ध हुआ। अन्ततोगत्वा, प्रतिवासुदेव अश्वग्रीव, वासुदेव त्रिपृष्ठ द्वारा मारा गया। इस प्रकार त्रिपृष्ठ ने अर्द्ध-भरत पर आधिपत्य कर लिया। यह युद्ध भगवान श्रेयांसनाथ के केवल-ज्ञान प्राप्ति से पूर्व हुआ था।

एक बार वासुदेव त्रिपृष्ठ के यहाँ कुछ दक्ष संगीतज्ञ मधुर संगीत प्रस्तुत करने आए। संगीत की सुरलहरियाँ वातावरण में रस घोल रही थी। शयन का समय होने पर त्रिपृष्ठ ने शय्यापाल को आदेश दिया कि मुझे नींद आ जाने पर संगीत बंद करा देना। मधुर संगीत की मस्ती में शय्यापाल त्रिपृष्ठ के आदेश का पालन करना भूल गया। रात भर संगीत चलता रहा। सहसा त्रिपृष्ठ जब जाग उठे और क्रुद्ध हो पूछा - ''अरे! संगीत बन्द क्यों नहीं कराया?''

शय्यापाल ने कहा - ''महाराज! संगीत मुझे इतना कर्णप्रिय लगा कि समय का कुछ ध्यान नहीं रहा।''

इस पर त्रिपृष्ठ ने सेवकों को आदेश देकर

शय्यापाल के कानों में गरम-गरम शीशा डलवाया, जिससे शय्यापाल तड़पकर वहीं मर गया। इस क्रूर कर्म से त्रिपृष्ठ के सम्यक्त्व का भाव खण्डित हो गया और उसने नरकायु का बंध कर लिया। चौरासी लाख वर्ष की आयु भोगकर त्रिपृष्ठ सातवीं नरक का अधिकारी बना।

बलदेव अचल ने जब भाई की मृत्यु के समाचार सुने तो भ्रातृप्रेम के कारण शोकाकुल व अविवेकी होकर करुण स्वर में विलाप करते हुए मूर्च्छित हो गये। मूर्च्छा दूर होने पर वृद्धजनों के समझाने से एवं स्व-चिंतन से संसार की असारता जानी, सांसारिक विषयों से विमुख हो आचार्य धर्मघोष से जिनदीक्षा ग्रहण कर तप-संयम से सकल कर्मों का क्षयकर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गए। उनकी 85 लाख वर्ष की आयु थी।

चक्रवर्ती सनत्कुमार

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में हस्तिनापुर नगर के शासक महाराज अश्वसेन शौर्य, शील आदि गुणों से सम्पन्न थे। उनकी धर्मशीला रानी सहदेवी ने गर्भस्थ जीव के पुण्यप्रभाव से चौदह शुभस्वप्नों को देखा और बड़ी प्रसन्न हुई। यथासमय उन्होंने स्वर्ण के समान कान्तिवाले तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम सनत्कुमार रखा गया। उचित लालन-पालन के साथ सनत्कुमार ने किशोरावस्था

पार कर युवावस्था में प्रवेश किया। सनत्कुमार के एक बहुत ही गुणवान एवं पराक्रमी मित्र का नाम महेन्द्रसिंह था।

एक दिन महाराज अश्वसेन को उत्तम जाति के बहुत से घोड़े भेंट में प्राप्त हुए। राजकुमार सनत्कुमार उनमें से सर्वोत्तम घोड़े पर सवार हो गए। राजकुमार के आरूढ़ होते ही घोड़ा हवा से बातें करने लगा। राजकुमार ने घोड़े को रोकने का बहुत प्रयत्न किया पर वह उतने ही अधिक वेग से आगे बढ़ता गया। महेन्द्रसिंह आदि साथियों ने पीछा किया पर सनत्कुमार का साथ न पा सके। राजा अश्वसेन अपने पुत्र के इस तरह अदृश्य होने का समाचार सुनकर बहुत दुःखी हुए और स्वयं भी राजकुमार की खोज में निकल पड़े। महाराज का सारा परिश्रम विफल होते देख महेन्द्रसिंह ने किसी प्रकार समझा-बुझा कर उन्हें वापस लौटाया और एकाकी ही सनत्कुमार की खोज में आगे बढ़ा। एक वर्ष तक खोज करने पर भी कुमार का कहीं पता नहीं चला।

एक दिन जंगल में एक स्थान पर विभिन्न पक्षियों का मधुर स्वर सुनाई दिया और उस आवाज की ओर से शीतल सुगंधित वायु का हल्का स्पर्श भी आता प्रतीत हुआ। महेन्द्रसिंह कुछ आशान्वित हो उस ओर बढ़ा। कुछ दूर जाने पर उन्हें रमणियों के आमोद-प्रमोद के मधुर शब्द सुनाई पड़े। नजदीक जाने पर रमणियों के मध्य अपने मित्र

सनत्कुमार को देखकर साश्चर्य हर्ष विभोर हो उठा। सनत्कुमार ने भी महेन्द्रसिंह को पहचान लिया और उठकर आलिंगन करते हुए उसका स्वागत किया। पारस्परिक कुशलवृत्त पूछने पर महेन्द्रसिंह ने सनत्कुमार की आपबीती जाननी चाही तो उसने उन रमणियों में एक की ओर इशारा करते हुए कहा कि मेरी कहानी मेरी अपेक्षा विद्याधर कन्या बकुलमति से सुनना ज्यादा अच्छा होगा।

बकुलमती ने महेन्द्रसिंह को संक्षेप में बताया कि किस प्रकार सनत्कुमार ने यक्ष की दानवी शक्तियों को वीरता से पराजित किया और उन्हें अपनी अनुचरी के रूप में स्वीकार किया। महेन्द्रसिंह सनत्कुमार की गौरवगाथा सुनकर अत्यंत प्रसन्न हुए और उन्हें हस्तिनापुर एवं उनके माता-पिता की याद दिलाई। सनत्कुमार बड़ी प्रसन्नता से अपने परिवार के साथ अपने माता-पिता से मिलने के लिए चल पड़े। सनत्कुमार के आगमन का समाचार सुनकर महाराज अश्वसेन के हर्ष की सीमा न रही। उन्होंने बड़े समारोह के साथ राजकुमार का नगर-प्रवेश कराया और योग्य समय देखकर उनका राज्याभिषेक कर दिया। महेन्द्रसिंह को कुमार का सेनापति बनाकर स्वयं ने स्थविर मुनि के पास दीक्षा लेकर साधना का पथ अपनाया। सनत्कुमार ने धर्म और न्याय-नीतिपूर्वक राज्य का संचालन किया। उनकी

आयुधशाला में चक्ररत्न प्रकट होने पर उन्होंने षट्खण्ड विजय कर चक्रवर्ती पद प्राप्त किया। सनत्कुमार के रूप-सौंदर्य की प्रशंसा स्वर्ग में भी होने लगी। परिणामस्वरूप दो देवता ब्राह्मण का वेश बनाकर उन्हें देखने आए। उस समय वे स्नानपीठ पर खुले बदन नहाने बैठे थे, तब उनका रूप लावण्य देखकर ब्राह्मण रूपी देव चकित रह गए। सनत्कुमार ने उन्हें कहा- अभी क्या देखते हो, स्नान के पश्चात् जब वस्त्राभूषणों से सुसज्जित हो राज्यसभा में बैठेंगे, तब देखना। ब्राह्मणों ने ऐसा ही किया, पर उस समय तक सनत्कुमार के रूप में परिवर्तन आ चुका था और ब्राह्मण मन ही मन खेद का अनुभव करने लगे। राजा ने उनके इस हावभाव का कारण पूछा तो वे बोले-''महाराज, आपके सुन्दर शरीर में तो कीड़े उत्पन्न हो गए हैं।''

शरीर की इस क्षणभंगुरता और नश्वरता को देखकर सनत्कुमार तुरन्त विरक्त हो गए और सम्पूर्ण वैभव-परिग्रह त्यागकर मुनि बन गए। दीक्षित होकर वे निरंतर बेले-बेले की तपस्या करने लगे जिसके फलस्वरूप उन्हें अनेक लब्धियाँ प्राप्त हुईं। एक बार पुन: स्वर्ग में उनकी प्रशंसा होने लगी तो एक देव उनके धैर्य की परीक्षा लेने आया। देव ने वैद्य का रूप बनाया और मुनि के पास पहुँचा। मुनि ने कहा-''वैद्य! अगर भवरोग की दवा कर सको तो ठीक है, अन्यथा

द्रव्यरोग की दवा तो मैं भी कर सकता हूँ।'' ऐसा कह कर मुनि ने रक्तस्राव से गलित अंगुली को थूक लगाया और वह तत्काल कंचन के समान चमकने लगी। देव ने लज्जित हो क्षमा-याचना की और अपने स्थान को लौट गया। इस प्रकार महामुनि सनत्कुमार एक लाख वर्ष तक संयम का पालन कर अपनी अंत समय की आराधना कर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गए।

भगवान शांतिनाथ-जीवदया का सुफल

सोलहवें तीर्थंकर भगवान श्री शांतिनाथ का जीवन बड़ा ही लोकोपकारी एवं प्रभावशाली था। उन्होंने अपने कई पूर्वभवों से तीर्थंकर पद की योग्यता सम्पादित की। अपने एक पूर्व भव में वे मेघरथ नामक राजा हुए थे। मेघरथ बड़े पराक्रमी, साहसी, धर्मनिष्ठ तथा दयालु थे।

एक दिन व्रत ग्रहणकर वे पौषधशाला में बैठे थे। एक कबूतर आकर उनकी गोद में गिर पड़ा, वह भय से काँप रहा था। राजा ने स्नेह से उसकी पीठ पर हाथ फेरा और उसे आश्वस्त किया। इतने में ही एक बाज आया और कबूतर की माँग करने लगा। राजा ने शरणागत को लौटाने में अपनी असमर्थता प्रकट की। इस पर बाज ने कहा - ''ताजा माँस के बिना मैं जीवित नहीं रह सकता। इस प्रकार कबूतर की जान बचाकर आप मुझे मरने को विवश कर रहे हैं।

आप सचमुच धर्मात्मा हैं तो दोनों की रक्षा कीजिए।'' यह सुनकर राजा मेघरथ ने कहा–अगर ऐसा है तो मैं कबूतर के बराबर अपना ताजा माँस देता हूँ, उसे खाकर तुम कबूतर को छोड़ दो। तराजू मँगाया गया। राजा ने एक पलड़े में कबूतर को रखा और दूसरे में अपने शरीर से माँस काटकर रखना शुरु किया। जब कबूतर वाला पलड़ा अपने स्थान से नहीं हिला तो राजा स्वयं सहर्ष उस पलड़े में बैठ गये। राजा के इस अपूर्व त्याग को देखकर बाज बना देव अपने वास्तविक रूप में प्रकट हुआ और बोला–''मैंने इन्द्र की बात पर अविश्वास कर आपको कष्ट दिया। आप मुझे क्षमा प्रदान करें। आपकी श्रद्धा और दया अनुकरणीय है।''

कुछ समय बाद मेघरथ ने पौषधशाला में अष्टम–तप का व्रत लिया। तप समाप्त होने पर राजा ने दीक्षा लेने का संकल्प किया और अपने पुत्र को राज्य देकर मुनि धनरथ के पास अनेक साथियों के साथ दीक्षा ली। पूर्व में प्राणीदया से उत्कृष्ट पुण्य का संचय कर अब तप और संयम से कर्मनिर्जरा की और तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन किया। अन्त समय में अनशन की आराधना कर सर्वार्थसिद्धविमान में देवरूप में उत्पन्न हुए।

मेघरथ का जीव सर्वार्थसिद्धविमान से च्यव कर भाद्रपद कृष्णा सप्तमी को महारानी अचिरा के गर्भ में प्रविष्ट

हुआ। शांतिनाथ के गर्भ में आने से पहले हस्तिनापुर और आस-पास का क्षेत्र महामारी से पीड़ित था। सब लोग इससे चिंतित थे। माता अचिरादेवी के गर्भ धारण के समय से ही महामारी शांत होने लगी और धीरे-धीरे सारी स्थिति सामान्य हो गयी। इसलिए माता-पिता ने पुत्र का नाम शांतिनाथ रखा। जीवदया का सुप्रभाव जन्म-जन्मान्तर और देश-देशान्तर तक होता है।

पशुबलि का दुष्परिणाम

उपरिचर वसु हरिवंश का एक प्रसिद्ध और प्रतापी राजा था। उसने बचपन में क्षीरकदंबक नामक उपाध्याय के पास अध्ययन किया। उपाध्यायपुत्र पर्वत और महर्षि नारद भी उसके सहपाठी थे। उस समय इन तीनों शिष्यों को साथ देखकर किसी अतिशय-ज्ञानी ने अपने साथी साधु से कहा था कि इन तीनों में से एक तो राजा बनेगा, दूसरा स्वर्ग का अधिकारी और तीसरा नरक में जाएगा। जब यह बात क्षीरकदंबक के कानों में पड़ी तो उन्होंने सोचा कि वसु राजपुत्र है अत: वह तो राजा बनेगा, पर बाकी दोनों में से कौन नरक का अधिकारी बनेगा, इसका पता लगाना चाहिए। उन्होंने एक कृत्रिम बकरा बनाया और उसमें लाक्षारस भर दिया। बकरा बिल्कुल सजीव-सा लग रहा था। क्षीरकदंबक ने नारद को बुलाकर कहा - वत्स, मैंने

इस बकरे को मंत्र से स्तंभित कर दिया है। आज बहुला अष्टमी है अत: संध्या के समय इसे ऐसे स्थान पर ले जाओ जहाँ कोई नहीं देखता हो और मारकर चुपचाप लौट आओ।

नारद संध्या के समय उस बकरे को अपने साथ लेकर एक निर्जन स्थान पर गए। जब उन्होंने बकरे को मारना चाहा तो उनके मन में विचार आया कि यहाँ तो सारे तारे और नक्षत्र देख रहे हैं। वह बकरे को लेकर वन में और भीतर गए, वहाँ पर उनके मन ने कहा–यहाँ सभी पेड़–पौधे और वनस्पतियाँ देख रही हैं। और आगे जाने पर एक छोटा–सा देवालय मिला जो सचमुच एकान्त स्थान पर था। ज्योंही नारद ने बकरे को मारने का उपक्रम किया, उनके मन में ख्याल आया कि यहाँ तो स्वयं देवालय के देवता देख रहे हैं। अन्त में बकरे को ज्यों का त्यों साथ लिए नारद गुरु के पास पहुँचे और सारी बात कह सुनाई। गुरु ने नारद को साधुवाद दिया और कहा–वत्स, तुमने ठीक ही किया, तुम जा सकते हो पर यह बात किसी को बताना मत।

इसके बाद क्षीरकदंबक ने अपने पुत्र पर्वत को बुलाया और बकरा थमाते हुए उसे भी वही आदेश दिया। पर्वत बकरे को लेकर एक सुनसान गली में पहुँचा, जहाँ उसे दूर तक कोई नहीं दिखाई दिया। जब उसे विश्वास हो गया कि उसे कोई नहीं देख रहा है तो उसने बकरे को काट दिया

और आश्रम में आकर सारी बात अपने पिता को सुनाई। अपने पुत्र की बात सुनकर उपाध्याय को बड़ा क्रोध आया और पर्वत से बोले – अधम, तूने यह क्या किया? क्या नहीं जानता कि आकाशमण्डल के देव, वनस्पतियाँ एवं अदृश्य रूप से विचरण करने वाले गुह्यक हमारे सभी कार्यों को देखते हैं। और नहीं तो तेरे मन में यह विचार आना चाहिए था कि तू स्वयं देख रहा है। तूने बकरे को मार कर जघन्य पाप किया है, तू अवश्य नरक में जाएगा। अच्छा होगा, तू मेरे सामने से दूर हो जा।

अध्ययन समाप्त होने पर एक–एक शिष्य गुरु से विदा लेकर अपने–अपने निवास को लौटने लगे। जब वसु गुरु क्षीरकदंबक के पास आशीर्वाद लेने गया और गुरु से गुरुदक्षिणा माँगने का अनुरोध किया तो उपाध्याय बोले– वत्स, बड़े होकर राजा बनने पर अपने गुरुभ्राता पर्वत के प्रति भी स्नेह रखना, यही मेरी गुरुदक्षिणा होगी।

वसु आगे चलकर चेदि देश का राजा बना। एक बार शिकार के लिए जंगल में घूमते समय वसु ने एक हिरण को निशाना बनाकर तीर छोड़ा तो वह तीर बीच में ही गिर पड़ा। पास जाने पर वसु ने देखा कि वहाँ एक विशाल पारदर्शी पत्थर है जो हिरण और तीर के बीच में था, जिससे हिरण तो दिखाई दिया पर पत्थर नहीं दिखाई दिया और

उसी से टकरा कर तीर हिरण के पास पहुँचने के पहले ही जमीन पर गिर पड़ा था। वसु ने सोचा कि ऐसा पारदर्शी स्फटिक पत्थर मेरे जैसे राजा के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकता है। राजप्रासाद में आकार वसु ने यह सारी बात अपने अमात्य को बताई तो अमात्य ने वह विशाल स्फटिक पत्थर राजमहल में मंगवा लिया और सभा मण्डप में स्थापित कर महाराज वसु का सिंहासन उस पर रखवा दिया। स्फटिक पर रखे रहने के कारण लोग समझते कि वसु का सिंहासन आकाश में अधर लटक रहा है। अत: राजा वसु का नाम ''उपरिचर वसु'' के रूप में विख्यात हो गया।

उपाध्याय क्षीरकदंबक की मृत्यु के पश्चात् उनका एकमात्र पुत्र पर्वत उपाध्याय बना और अध्यापन कार्य करने लगा। वह अपने शिष्यों को ''अजैर्यष्टव्यं'' का अर्थ बताने लगा कि अज अर्थात् बकरा, यानी बकरे से यज्ञ करना चाहिए। जबकि वेदों में अज का प्रयोग 'नहीं जन्म लेने वाला' अर्थात् नहीं उगने वाला अनाज-बीज के रूप में किया गया है। नारद को जब इस बात का पता चला तो तुरंत पर्वत के पास पहुँचे और समझाने लगे कि वह वेदवाक्य के परम्परागत अर्थ को अनर्थ के रूप में परिवर्तित न करे। ऋषियों ने अज का अर्थ सदा से 'त्रैवार्षिक-यव-व्रीही' अर्थात् ''नहीं उगने वाला धान'' बताया है न कि बकरा।

पर पर्वत नारद की बात मानने को तैयार नहीं हुआ। वह अपनी बात पर दृढ़ रहा, और कहा कि यदि मेरी बात मिथ्या साबित हो तो मेरी जिह्वा काट डाली जाए अन्यथा तुम्हारी जिह्वा काट ली जाए। अन्त में यह निर्णय लिया गया कि यह प्रश्न उपाध्याय के तीसरे शिष्य हमारे सहपाठी महाराज वसु के समक्ष रखा जाए और वे जो निर्णय दें वह हम दोनों के लिए मान्य हो।

पर्वत ने यह सारी बात अपनी माता को बताई तो उन्होंने दृढ़ता के साथ कहा कि तुम्हारे पिता नारद को एक सम्यक् शिक्षा ग्रहण करने वाला विद्यार्थी मानते थे, अत: नारद की बात ही सही होनी चाहिए। पर्वत किसी भी हालत पर अपनी हार मानने को तैयार नहीं था। अन्त में पर्वत की माता महाराज वसु के पास पहुँची। उसने नारद और पर्वत के बीच विवाद की बात बताकर वसु से ''अजैर्यष्टव्यं'' का उपाध्याय द्वारा बताया हुआ अर्थ पूछा! राजा वसु ने नारद वाले अर्थ को ही उपाध्याय द्वारा निर्धारित किया अर्थ बताया, तो पर्वत की माता व्याकुल और चिंतित हो उठी। उन्होंने वसु से कहा – तुम्हारे इस निर्णय से मेरे पुत्र का तो सर्वनाश हो जाएगा, इससे अच्छा है मैं पहले ही अपने प्राणों का परित्याग कर दूँ। ऐसा कहकर उपाध्याय की विधवा पत्नी ने आत्महत्या करने का उपक्रम किया। यह देख राजा

वसु ने पर्वत के पक्ष में निर्णय देने का वचन उसकी माता को दे दिया।

दूसरे दिन विशाल जनसमूह एकत्र हुआ। राजा वसु अपने अधर में स्थित दिखने वाले सिंहासन पर आसीन हो गए तो नारद और पर्वत ने अपनी-अपनी बात राजा वसु के समक्ष रखी। वास्तविकता का सही ज्ञान होते हुए भी राजा वसु ने गुरुमाता और गुरुपुत्र के पक्ष में निर्णय दिया कि ''अजैर्यष्टव्यम्'' के अनुसार यज्ञ में बकरे का उपयोग करना चाहिए अर्थात् यज्ञ में बकरे की बलि चढ़ानी चाहिए। राजा वसु के द्वारा, 'जानते हुए असत्य का पक्ष लेने' के कारण उनका सिंहासन सत्य के समर्थक देवताओं द्वारा ठुकराया जाकर पृथ्वी पर आ गया, वे 'उपरिचर' से 'स्थलचर' हो गए। प्रामाणिकता को देखकर भी मूढ़तावश उन्होंने पर्वत के ही कथन को सही ठहराया। परिणामस्वरूप अदृश्य शक्तियों द्वारा वसु रसातल में ढकेल दिया गया। अधर्मपूर्ण असत्य-पक्ष का समर्थन करने के कारण उसे नरक में जाना पड़ा।

महाभारत में पशुबलि की निन्दा

प्राचीनकाल के ऋषि-महर्षि, राजा-महाराजा अज अर्थात् त्रैवार्षिकयव, घृत एवं वन्य औषधियों से यज्ञ करते थे। उस समय यज्ञों में पशु-बलि का कोई स्थान ही नहीं था। यज्ञों में पशुबलि को गर्हित, पापपूर्ण एवं घोर

निंदनीय समझा जाता था। यह महाभारत में उल्लिखित तुलाधार-उपाख्यान, विचरूनु उपाख्यान एवं उपरिचर राजा वसु के उपाख्यानों से स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है। महाभारत के शांति पर्व में भी वसुदेव हिण्डी से प्राय: अधिकांश अंशों में मिलता-जुलता उपाख्यान दिया हुआ है। चेदिराज वसु द्वारा असत्य-पक्ष का समर्थन करते हुए वैदिकी श्रुति ''अजैर्यष्टव्यम्'' में दिए गए ''अज'' शब्द का अर्थ त्रैवार्षिकयवों के स्थान पर छाग अथवा बकरा प्रतिपादित किया जा कर यज्ञों में पशुबलि का सूत्रपात हुआ, इस तथ्य को जैन और वैष्णव दोनों परम्पराओं के प्राचीन एवं सर्वमान्य ग्रंथ एकमत से स्वीकार करते हैं। यज्ञ में पशुबलि का वचनमात्र से अनुमोदन करने के कारण उपरिचर वसु को रसातल में अंधकारपूर्ण गहरे गर्त में गिरना पड़ा।

महाभारत के उल्लेखानुसार राजा वसु को घोर तपश्चर्या में निरत देखकर इन्द्र को शंका हुई कि यदि यह इसी तरह तपस्या करते रहे तो एक न एक दिन मेरा इन्द्रपद मुझसे छीन लेंगे। इस आशंका से विह्वल होकर इन्द्र वसु के पास आए और उन्हें तपस्या से विरत करने के लिए उन्हें समृद्ध चेदि का विशाल राज्य देने के साथ-साथ स्फटिक रत्नमय गगनविहारी विमान एवं सर्वज्ञ होने का वरदान दिया। वसु की राजधानी शक्तिमती नदी के तट पर थी। इन्द्र द्वारा

प्रदत्त आकाशगामी विमान में विचरण करने के कारण ये उपरिचर वसु के नाम से विख्यात हुए। उपरिचर वसु बड़े सत्यनिष्ठ, अहिंसक और यज्ञशिष्ट अन्न का भोजन करने वाले थे। अंगिरस-पुत्र बृहस्पति इनके गुरु थे। न्याय, नीति एवं धर्मपूर्वक राज्य करते हुए राजा वसु ने महान् अश्वमेघ यज्ञ किया। उस अश्वमेघ यज्ञ में स्वयं बृहस्पति, द्वित, त्रित, धनुष, रैभ्य, शालिहोत्र, कपिल, वैशम्पायन, कण्व आदि 16 महर्षि सम्मिलित थे। उस महान् यज्ञ में यज्ञ के लिए सम्पूर्ण आवश्यक सामग्री एकत्र की गई पर उसमें किसी भी पशु का वध नहीं किया गया। राजा उपरिचर वसु पूर्ण अहिंसक भाव से उस यज्ञ में उपस्थित हुए। वन में उत्पन्न फल, मूल आदि पदार्थों से ही उस यज्ञ में देवताओं के भाग निश्चित किए गए। भगवान नारायण ने वसु के इस प्रकार के यज्ञ से प्रसन्न हो स्वयं उस यज्ञ में प्रकट हो महाराज वसु को दर्शन दिए और अपने लिये अर्पित पुरोडाश स्वीकार किया। उस महान् अश्वमेघ यज्ञ को पूरा करने के बाद राजा वसु बहुत समय तक प्रजा का पालन करते रहे।

एक बार देवताओं और ऋषियों में यज्ञों में दी जाने वाली आहुति के संबंध में विवाद छिड़ गया। देवगण ऋषियों से कहने लगे कि ''अजैर्यष्टव्यम्'' अर्थात् अज के द्वारा यज्ञ करना चाहिए - इस विधान में ''अज'' शब्द का अर्थ

बकरा समझना चाहिए। इस पर ऋषियों ने कहा – यज्ञों में बीजों का उपयोग करना चाहिए, वैदिकी श्रुति यही कहती है। बीजों का नाम ही अज है, अज के नाम पर बकरे का वध करना उचित नहीं है। जहाँ कहीं भी यज्ञ में पशुओं का वध होता हो, वह सत् पुरुषों का यज्ञ या धर्म नहीं हैं।

जिस समय देवताओं और ऋषियों में यह वाद-विवाद चल रहा था उस समय नृपश्रेष्ठ वसु भी आकाशमार्ग से विचरण करते हुए उस स्थान पर आ पहुँचे। उन्हें आते देखकर ब्रह्मर्षियों ने देवताओं से कहा – ये नरेश हम लोगों का संदेह दूर करेंगे। ये स्वयं यज्ञ करने वाले, सम्पूर्ण भूतों के हितैषी तथा महान् पुरुष हैं, शास्त्रों के विपरीत नहीं जा सकते। तब ऋषियों और देवताओं ने एक स्वर में राजा वसु से कहा–राजन्! किसके द्वारा यज्ञ करना चाहिए? अन्न द्वारा या बकरे के द्वारा? राजा ने उन्हीं लोगों से पूछा कि उनमें से किसको क्या प्रिय है? अज शब्द का अर्थ कौन बकरा मानता है और कौन अन्न? वसु के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए ऋषियों ने कहा–राजन् हम लोगों का मत यह है कि अन्न से यज्ञ करना चाहिए पर देवताओं का मत है कि छाग नामक पशु से यज्ञ होना चाहिए। अब आप अपना निर्णय हमें बताएँ।

राजा वसु ने देवताओं का पक्ष लेते हुए कहा–अज

का अर्थ है छाग अथवा बकरा, अत: बकरे से ही यज्ञ होना चाहिए। यह सुनकर सभी ऋषि क्रुद्ध हो उठे और बोले- तुमने यह जानते हुए भी कि 'अज' का वास्तविक अभिप्राय अन्न से है, देवताओं का पक्ष लेकर बकरा बताया है, अत: तुम्हारा आकाश से पतन होगा, तुम्हारी आकाश में विचरने की शक्ति समाप्त हो जाएगी। तुमने यदि वेद-शास्त्र के विरुद्ध कहा है तो तुम पाताल चले जाओगे और यदि हमारी बात शास्त्र विरुद्ध होगी तो हम पतन के भागी होंगे। ऋषियों का कथन समाप्त होते ही राजा उपरिचर आकाश से भूमि पर आ गए और तुरन्त पृथ्वी के विवर में प्रवेश कर गए।

वसु के आठ पुत्रों में से छ: पुत्र क्रमश: एक के बाद एक सिंहासन पर बैठे, पर सिंहासन पर आरूढ़ होते ही किसी दैवीशक्ति द्वारा मारे गये। इससे भयभीत होकर शेष दो पुत्र सुवसु और पिहद्धय 'शुक्तिमती' नगरी से भाग खड़े हुए। सुवसु मथुरा में जा बसा और पिहद्धय का उत्तराधिकारी सुबाहु हुआ। सुबाहु के पश्चात् क्रमश: दीर्घबाहु, वज्रबाहु, अर्द्धबाहु, भानु और सुभानु हुए। सुभानु के पश्चात् उनके पुत्र यदु हरिवंश के महान् प्रतापी राजा हुए। यदु के वंश में सौरी और वीर नाम के दो बड़े शक्तिशाली राजा हुए। ये राजा दयालु थे, इसलिए यशस्वी बने।

इतिहास पुरुष आचार्य हस्ती

युग मनीषी आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज भारतीय निर्ग्रन्थ श्रमण परम्परा के उज्ज्वल नक्षत्र थे। वि. सं. 1967 की पौष शुक्ला चतुर्दशी (13 जनवरी 1911) को राजस्थान के जोधपुर जिलान्तर्गत पीपाड़ सिटी में उनका जन्म हुआ। उनके जन्म के दो माह पूर्व ही उनके पिता श्री केवलचन्द बोहरा प्लेग की चपेट में आकर परलोक सिधार गये। उनकी माँ श्राविका रूपकँवर (रूपादेवी) पर यह अनभ्र वज्रपात था। इस घटना से रूपादेवी को संसार से विरक्ति हो गई। वैराग्यभाव के साथ ही उसने बालक हस्तीमल का पालन-पोषण किया और गहरे धर्मसंस्कार प्रदान किये। इस बीच कुछ ही वर्षों के अन्तराल में हस्ती के नाना तथा दादी का भी देहान्त हो गया। जन्मजात वैरागी बालक हस्ती के चित्त पर इन घटनाओं का गहरा असर हुआ और उनका वैराग्य दृढ़ से दृढ़तर बनता गया।

माघ शुक्ला द्वितीया वि.सं. 1977 (10 फरवरी 1921) को अजमेर (राज.) में महज 10 की बालवय में आचार्य श्री शोभाचन्द्रजी महाराज से वैरागी हस्तीमल ने मुनि जीवन अंगीकार कर लिया। उनके साथ ही उनकी वीरमाता रूपादेवी तथा अन्य दो मुमुक्षुओं ने भी दीक्षा लेकर संयम की राह अपना ली। दीक्षा के उपरान्त ही उन्होंने जैनागम, प्राच्य भाषा, दर्शन और साहित्य का अध्ययन शुरू कर दिया। बचपन से ही विशिष्ट

योग्यता और प्रतिभा के धनी बालयोगी मुनि हस्तीमल का मात्र साढ़े पन्द्रह वर्ष की वय में ही संघ नायक के रूप में चयन कर लिया गया। थोड़े ही समय में उनका ज्ञान-ध्यान इतना अनुत्तर बन गया कि मात्र 19 वर्ष 3 माह और 19 दिन की तरुण वय में वि. सं. 1987 की वैशाख शुक्ला 3 अक्षय तृतीया को जोधपुर में उन्हें स्थानकवासी परम्परा के रत्नसंघ के सप्तम आचार्य के रूप में अभिषिक्त कर दिया गया। जैन इतिहास में कलिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र के बाद संभवत: यह पहला अवसर था जब 20 वर्ष से कम उम्र के किसी मुनि को आचार्य पद पर आरूढ़ किया गया।

आचार्य हस्ती का व्यक्तित्व अखूट आध्यात्मिक ऊर्जा से भरा और कृतित्व बहुआयामी था। सामायिक साधना के द्वारा समभाव-प्राप्ति का सन्देश देने के साथ उन्होंने लाखों लोगों को स्वाध्याय से जोड़कर समाज में मैत्री और ज्ञान का नव आलोक प्रसारित कर दिया। व्यसनमुक्ति, कुरीति-उन्मूलन, नारी-शिक्षा जैसे अनेक कदम उन्हें महान समाज सुधारक के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। करुणा के सागर आचार्य हस्ती ने साँप जैसे विषैले प्राणी को भी अभय प्रदान किया। अहिंसा, क्षमा और समता को उन्होंने व्यवहार स्तर पर जिया और दुनिया को यह सन्देश दिया कि भगवान महावीर के अहिंसा आदि जीवन मूल्य सभी मौजूदा समस्याओं का समाधान करने में पूर्ण सक्षम है।

प्राचीन भाषा व लिपि के विशेषज्ञ आचार्य हस्ती का जीवन उनके जीवनकाल में ही इतिहास बन गया था। अथक श्रम और प्रचुर प्रामाणिक सन्दर्भो के साथ लगभग साढ़े तीन हजार पृष्ठों में लिखित और चार भागों विभक्त 'जैन धर्म का मौलिक इतिहास' जैन धर्म और भारतीय समाज के लिए उनका अमर अवदान है। इसके अतिरिक्त कई जैन आगम ग्रंथों का उन्होंने सम्पादन, अनुवाद और पद्यानुवाद किया। धर्म, संस्कृति और अध्यात्म की गहरी अनुभूतियों से अनुप्राणित काव्य उन्होंने रचे। वे एक कुशल और प्रभावी प्रवचनकार थे। उनके प्रेरक प्रवचनों का संकलन 'गजेन्द्र व्याख्यानमाला' शीर्षक से सात भागों में प्रकाशित हुआ।

राजस्थान, दिल्ली, हरियाणा, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु आदि क्षेत्रों में विचरण करते हुए आचार्य हस्ती ने कुल 70 चातुर्मास किये और 85 मुमुक्षुओं को श्रमण जीवन में दीक्षित किया। वि. सं. 2048 की वैशाख (प्रथम) शुक्ला अष्टमी (21 अप्रेल 1991) को रात्रि 8 बजकर 21 मिनट पर 13 दिवसीय तप-संथारे के साथ आचार्य हस्ती इस नश्वर देह को छोड़कर देवलोकगमन कर गये। जन्म और जीवन की तरह उनका महाप्रयाण भी एक इतिहास बन गया। सम्प्रति उनके सुयोग्य शिष्य आचार्य श्री हीराचन्द्रजी महाराज रत्नसंघ के अष्टम पट्टधर हैं।

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल
के विविध सेवा सोपान

- जिनवाणी हिन्दी मासिक पत्रिका का प्रकाशन
- जैन इतिहास, आगम एवं अन्य सत्साहित्य का प्रकाशन
- आचार्य श्री हस्ती आध्यात्मिक शिक्षण संस्थान
- अखिल भारतीय श्री जैन विद्वत् परिषद का संचालन
- वीतराग ध्यान साधना केन्द्र का संचालन

उक्त प्रवृत्तियों में दानी एवं प्रबुद्ध चिन्तकों के
रचनात्मक सक्रिय सहयोग की अपेक्षा है।

सम्पर्क सूत्र
मंत्री
सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल
दुकान नं. 182-183, के ऊपर, बापू बाजार
जयपुर-302003 (राजस्थान)
दूरभाष : 0141-2575997 फैक्स : 0141-2570753
ई-मेल - sgpmandal@yahoo.in